संडे मेल साप्ताहिक

रंगमंच

2019.01.0655(1)

'नागमंडल' स्त्री-पुरुष संबंधों का काल्पनिक यथार्थ

'निर्देशक का यह मूलभूत कर्त्तव्य है कि वह नाटक के अर्थ को सशक्त दृश्य बिंबों के ऐसे क्रम में जमा दे कि दर्शकों को अनजाने ही उसका अर्थ सहज सुलभ हो जाये. यद्यपि दर्शक उसका अर्थ अनजाने ही ग्रहण करते हैं, तथापि निर्देशक को अपना एक-एक प्रभाव अत्यंत सावधानी और मनन से नियोजित करना चाहिए ताकि रूप, रंग, छंद, दृश्य, ध्वनि और संगीत परस्पर मिलकर नाटक और नाटककार की संपूर्ण परिकल्पना प्रस्फुटित हो जाये.'

आनंद गुप्त

चंडीगढ़ के सुप्रसिद्ध वास्तुशिल्पी नेकचंद द्वारा निर्मित रॉकगार्डन के खुले मंच पर, 'द कंपनी' के कलाकारों ने यशस्वी नाटकार निर्देशक-अभिनेता गिरीश करनाड के कन्नड़ नाटक 'नागमंडल' से अनुप्रेरित, नीलममानसिंह चौधरी द्वारा निर्देशित पंजाबी रूपांकर 'नागछाया' का बहुचर्चित प्रदर्शन करने के बाद इसक्षनयी दिल्ली के वातानुकूलित कमानी सभागार में लोक शैली के बहुआयामी रूप-रंग में विचारोत्तेजक प्रदर्शन किया.

एक कन्नड लोककथा पर आधारित यह नाटक स्त्री-पुरुष संबंधों के यथार्थ को एक काल्पनिक-धरातल पर मुख्य चरित्र रानी और श्यामा के माध्यम से और वास्तविक धरातल पर सहायक चरित्र बिश्नों तथा उसके बेटे केशों के माध्यम से पुनः परिभाषित करने का एक रोचक किंतु असफल रंग-प्रयास है. 'ययाति', 'तुगलक' और 'हयवदन' जैसे सशस्त चरित्रों और अद्‌भुत नाटकों का रचनाकार अपनी मान्यता, चरित्रों की स्पष्टता तथा समग्र नाटकीय प्रभाव में, इसी कथ्य और द्वंद्व पर आधारित नाटक 'हयवदन' से बहुत पीछे रह गया.

नाटक की नायिका रानी एक दुश्चरित्र वेश्यागामी पुरुष श्यामा से ब्याही जाती है जो उसे अपने घर में कैद कर उससे नौकरानी की तरह व्यवहार करता है. उनके बीच पति पत्नी जैसा ससंर्ग-संबंध कभी नहीं बन पाता जो कि गांव में चर्चा का विषय होता है. रानी को अकेलेपन की इस त्रासदी से उबारने के लिए बिश्नो ताई उसे एक वशीकरण बूटी देती है जिसके इस्तेमाल से रानी श्यामा को अपनी ओर आकर्षित कर सके. लेकिन खाने में बूटी के 'कुप्रभाव' से आतंकित होकर रानी अपने 'पतिधर्म' की रक्षा करते हुए उस खाने को मंदिर के किनारे बने सांपों के बिल में डाल देती है. जिसके परिणामस्वरूप एक इच्छा शक्तिधारी नाग उसके पति श्यामा का रूप धर हर रात रानी के पास आने लगता है. रानी इसे बूटी का चमत्कार मान उसके साथ रात को सहवास का सुख भोगती है – और आशंका के बावजूद दिन में तिरस्कार और प्रताड़ना का दुःख चुपचाप सह लेती है. लेकिन अचानक रानी के गर्भवती होने पर उसके जीवन में व्यवधान आ जाता है. और इसके बाद नाटक में प्रेम का त्रिकोण एक फिल्मी अंदाज ग्रहण कर लेता है. श्यामा द्वारा पत्नी (रानी) की बदचलनी की पंचायत में शिकायत, रानी की नाग परीक्षा, प्रेम के वशीभूत नाग द्वारा जीवन त्याग तथा रानी की एक सती-देवी के रूप में स्थापना जैसे रोचक और नाटकीय प्रसंगों के बावजूद नाटककार और निर्देशिका अपनी इस कृति में संबंधों के यथार्थ और उसके सुख-दुःख की काल्पनिकता को प्रभावी ढंग से परिभाषित नहीं कर पाये.

'नागमंडल' का एक भावपूर्ण दृश्य

हालांकि कहानी के सूत्रधार के माध्यम से नाटक को नये अर्थ देने की कोशिश की गयी मगर नाटक के चरित्र उसे साकार नहीं कर सके. और तो और गिरीश करनाड के प्रिय व्याख्याकार, लेखक आलोचक मित्र के. कुर्काटी भी नाटक के मूल आलेख से मुख्य आख्यान और उपाख्यान का अंतरसंघ नहीं समझ पाये.

मंचित प्रस्तुति 'नागछाया' के चरित्रों के विपरीत नाटककार करनाड का कहना है, 'नाटक की नायिका रानी एक ऐसी औरत है जिसे पुरुष के रूप में एक प्रेमी की तलाश है—पति की नहीं. और इस नाटक में प्रेमी क्योंकि एक नाग है अतः वह व्यभिचारिणी भी नहीं है. मूल कथा में यह स्थिति समस्या के एक इतर-मानवीय पहलू को उजागर करती है. उपकथा में पुत्र अपनी अंधी मां को छोड़कर एक लड़की की तलाश में जाता है. यह लड़की भी नाग की तरह मायावी (यक्षणी) है और मां की प्रतिद्वंद्वी है. इसमें मां का अंधापन निष्कपट है जबकि रानी का अंधापन संदिग्ध है.' वह अपनी अतृप्त कामना की पूर्ति के लिए जानबूझकर अंधी बनी है. इसलिए मैंने दोनों कथ्यों को समानांतर रखने की कोशिश की है ताकि संबंधों के सुख और दुःख की कल्पना और यथार्थ को एक नया अर्थ दिया जा सके.

'नागमंडल' के माध्यम से मैंने 'रचनात्मकता' की परिभाषा खोजने की कोशिश की है. इस नाटक की कहानी मेरी नहीं है. ना ही मैंने उसे गढ़ा है. दरअसल यह नाटक एक ऐसी 'कहानी' का नाटक है जो 'घटने'को व्याकुल है. कहानी सुनाना भी एक सृजनात्मकता है और यह नाटक मात्र उस कहानी को कहने की एक युक्ति है और चीजों को समझने-समझाने के लिए नये अर्थ और आयाम देने के लिए एक प्रस्तुति का ढंग है.

यद्यति गिरीश करनाड का मानना है कि 'कहानी' का अपने आप में एक संपूर्ण और स्वतंत्र अस्तित्व है और कलाकार का काम है कि वह उक्त कहानी के लिए एक ऐसी दुनिया का सृजन कर सके जहां वह घट सके और संभव हो सके तो उसके नये अर्थ परिभाषित कर सके.

लेकिन सुरजीत पात्तर के पंजाबी रूपांतर, नीलममानसिंह द्वारा निर्देशित 'नागछाया' की 'मनमोहक' प्रस्तुति में ब. व. कारंत के कर्णप्रिय संगीत, शहरी और नक्काल कलाकारों का समन्वित जीवंत अभिनय, गायन और लोक तत्वों-प्रतीकों के रोचक इस्तेमाल के बावजूद इस नाटक की कहानी का कोई भी एक अर्थ परिभाषित नहीं हो पाया.

आजकल ब. व. कारंत का संगीत 'स्टार वेल्यू' की तरह नाटकों में लिया जा रहा है. उसकी रचनात्मकता की ओर कम ध्यान है. वरना क्या कारण है कि लोकनाटक हो - उसमें कारंत का संगीत हो और एक धुन या गीत ऐसा न हो जो दर्शक गुनगुनाता हुआ हाल के बाहर निकले? इसी कथ्य/थीम पर आधारित कारंत का 'हयवदन' इसका प्रमाण है.

किसी भी नाटक की सफल रचनात्मक प्रस्तुति के संदर्भ में सुप्रसिद्ध रंग शिल्पी निर्देशक इब्राहिम अल्काजी का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण और दिशा निर्देशक है:

'निर्देशक का यह मूलभूत कर्तव्य है कि वह नाटक के अर्थ को सशक्त दृश्य बिंबों में ऐसे क्रम में जमा दे कि दर्शकों को अनजाने में ही उसका अर्थ सहज-सुलभ हो जाये. यद्यति दर्शक उसका अर्थ अनजाने ही ग्रहण करते हैं, तथापि निर्देशक को अपना एक-एक प्रभाव अत्यंत सावधानी और मनन से नियोजित करना चाहिए ताकि रूप, रंग, छंद, दृश्य, ध्वनि और संगीति परस्पर मिलकर नाटक और नाटककार की संपूर्ण परिकल्पना प्रस्फुटित हो जाये.'

'नागछाया' की निर्देशका प्रतिभाशाली-नीलममानसिंह यदि अपने गुरु-अल्काजी के उपर्युक्त कथन का अनुपालन करें तो—बहुत संभव है कि वह नाटक के अपेक्षित 'लक्ष्य' और 'अर्थ' को रंगमंच पर भी स्थापित कर सकें. □

वाह गिरीश

सुप्रसिद्ध फिल्मकार-निर्देशक और संगीत नाटक अकादमी के अध्यक्ष गिरीश ने अपने नवीनतम नाटक 'नागमंडल' की पहली प्रति एक रंगकर्मी-निर्देशिका नीलममानसिंह को भेंट कर नाटक का एक सार्थक और अनौपचारिक लोकार्पण कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया.

यह संयोग ही है कि पंजाबी अकादमी द्वारा प्रायोजित, कमानी सभागर में मंचित नाटक 'नागछाया' मंचनोपरांत उन्हें मंच पर मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया गया – और उन्होंने आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित और उसी समय छपकर अंग्रेजी संस्करण की पहली प्रति बधाई स्वरूप नाटक के कलाकारों को भेंट कर नयी पहल की.

---

३१ जुलाई प्रेमचंद के जन्म दिवस के अवसर पर

साहित्य वही अच्छा है जो राजनीति का पिछलग्गू न हो

स्मरण

आज प्रेमचंद को हमारे मध्य से गये ५४ वर्ष बीत चुके हैं, मगर उनकी रचनाएं हमेशा याद दिलाती रहेंगी कि यह देश जितना जमींदारों का है उतना ही होरियों का है. जितना भ्रष्टाचार में लिप्त पंडित अलोपीदीनों का है उतना ही न्यायप्रिय कर्तव्यपरायण वंशीधरों का है. जितना डाक्टर चड्डा जैसे नैतिकताविहीन डाक्टरों का है, उतना ही मानवीय पीड़ा को समझने वाले भगतों का भी है.

जीतेंद्र मुग्ध

प्रेमचंद वह 'मील का पत्थर' हैं जो हर हिंदी साहित्य से जुड़ने वालों को आकर्षित करता है. कोई भी रचनाकार हो उसके मानस-पटल पर कुछ श्रेष्ठ नाम अवश्य अंकित रहते हैं. उन श्रेष्ठ नामों की सूची में पहला नाम उस साहित्यकार का रहता है जिसे सेठ-साहूकारों, पूंजीपतियों की चिंता न होकर गांव के प्रत्येक होरियों, कर्तव्यपरायण पर राजनीति के शिकार वंशीधरों और मासूम सरल निर्मलाओं की चिंता थी जिन्हें दहेज की दानवी परंपरा ने वृद्धों से जुड़ने को विवश किया है.

सच भी है, द्विवेदी युग के महान कथाशिल्पियों में मुंशीजी के लेखन की न्यायप्रियता, कहानी की पृष्ठभूमि दोनों ही सभी से अलग-थलग है. जीवन को शब्द चित्र के माध्यम से पेश करने में प्रेमचंद ने यथार्थ और आदर्श दोनों की उपयोगिता को महसूस किया है. धन, ऐश्वर्य से सराबोर चकाचौंधी चरित्रों को उस डिब्बे में से उठाया है जिस पर लिखा है, 'शोषित, उपेक्षित, पीड़ित सामग्री.' ऐसा जोखिम क्या आज के साहित्यकार को उठाना रुचिकर लगेगा? आज सभी समाज में बहुचर्चित सामग्रियों को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं, जिससे उनकी रचना ही नहीं नाम भी फुटपाथों पर बिकने वाली वस्तु बन जायें.

इस श्रेष्ठतम साहित्यकार ने हिंदी कहानी को एक विस्तृत आयाम प्रदान किया है. कहानी को मनोरंजन की सीमा रेखा से बाहर ले जाकर सामान्य जीवन यात्रा में शामिल करने का श्रेय भी प्रेमचंद को ही प्राप्त है.

सन् १८८० की ३१ जुलाई को वाराणसी शहर से आठ किलोमीटर दूर स्थित लमही गांव में एक बालक का जन्म कायस्थ परिवार में हुआ. बचपन में धनपत राय के नाम से जाने वाले इस बालक के शैशव अवस्था में ही इसके पिता श्री अजायबलाल श्रीवास्तव तथा माता श्रीमती आनंदी देवी का निधन हो गया. एकल संघर्ष करते हुए बालक धनपत राय ने स्नातक की शिक्षा प्राप्त की और सन् १९०१ से साहित्यिक जगत में रुचि लेने लगा. धनपत राय ने नवाब राय के नाम से उर्दू में साहित्य सृजन का कार्य आरंभ किया. साथ ही यह अध्यापन कार्य करते रहे. एक बार जो साहित्यिक यात्रा शुरू हुई तो वह तमाम झंझावतों से गुजरते हुए इनकी मृत्यु ८ अक्तूबर १९३६ में पूर्ण हुई.

मुंशीजी ने अपने विषय में स्वयं लिखा है– 'मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गड्ढे तो हैं पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है. जो सज्जन पहाड़ों के सैर के शौकीन है, उन्हें यहां निराशा ही होगी.' वास्तव में प्रेमचंद का जीवन समतल मैदान ही रहा. समय-समय पर आयी आपत्तियों ने उस मैदान में गड्ढे तो अवश्य बनाये मगर वह गहरी खाइयां नहीं बन सकीं.

प्रेमचंद ने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत अनेक भाषाओं की कहानियों से की. इन्होंने उर्दू में आठ उपन्यासों-असरारे मआविद, रूठी रानी, किशना, प्रेमा, वरदान, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि की रचना की. उर्दू की कहानी संग्रह 'सोजेवतन' नवाब राय के नाम की अंतिम रचना साबित हुई. इस कहानी संग्रह को ब्रिटिश सरकार ने सन् १९१० में जब्त कर लिया तथा इन पर मुकदमा चलाया मुकदमे के संदर्भ में मुंशी जी ने लिखा है –

'साहब ने मुझसे एक-एक कहानी का आशय पूछा और अंत में बिगड़कर बोले, 'तुम्हारी कहानियों में 'सिडिशन' भरा हुआ है. अपने भाग्य को बखानों की तुम अंग्रेजी अलमदारी में हो. मुगलों का राज्य होता तो तुम्हारे दोनों हाथ काट दिये जाते. तुम्हारी कहानियां एकांगी हैं. तुमने अंग्रेजी सरकार की तौहीन की है.' सन् १९०८ में प्रकाशित हुई इस रचना ने नवाबराय को हिंदी साहित्य से नये नाम के साथ जोड़ दिया. यह वही नाम था, जिस नाम से विश्व आज इन्हें जानता है. – प्रेमचंद.

इस प्रसंग के बाद शुरू हुई साहित्य साधना की अनवरत यात्रा. सन् १९१५ में 'सरस्वती' में प्रकाशित कहानी 'स्रोत' हिंदी की इनकी पहली रचना थी. ८ जून १९१० को इनका हिंदी का प्रथम काहनी संग्रह. 'सप्त सरोज' प्रकाशित हुआ, फिर तो एक सिलसिला सा शुरू हो गया. कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, गबन, गोदान, कर्मभूमि, मंगलसूत्र (अपूर्ण) इन उपन्यासों के अतिरिक्त लगभग ३०० कहानियों को जन्म दिया मुंशी प्रेमचंद ने. इनकी सारी कहानियां 'मान सरोवर' नामक कहानी – संग्रह के आठ भागों में मौजूद हैं, जिनका प्रकाशन सन् १९३६ से १९३९ में किया गया.

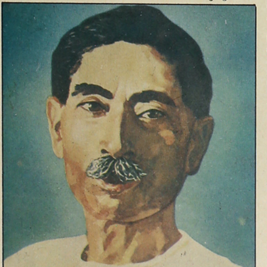

प्रेमचंद ने अपनी सशक्त लेखनी से उस समय के साहित्य में व्याप्त कई मान्यताओं को तोड़कर बहुत सी नयी मान्यताओं को जन्म दिया. फैंटेसी पौराणिक सामंती नायकों के मिथकों को इन्होंने पूरी तरह खत्म कर दिया और ऐसी कहानियों को जन्म दिया, जो समाज के धरातल पर पांव जमाकर यथार्थ का बोध कराती हैं. ऐसे चरित्रों को उठाया जो हमारे साथ रहते हुए भी हमें महत्वहीन से लगते हैं. ऐसी रचना या चरित्र निर्माण में प्रेमचंद की जिस प्रेरणा ने उत्प्रेरक का कार्य किया वह शायद इनकी गहरी एवं व्यापक संवेदना ही है, जो स्वप्निल वातावरण की जगह एक सजीव एवं यथार्थपरक दृश्य उपस्थित कर देती है.

प्रेमचंद 'स्मृति' ग्रंथ में स्व. उदयशंकर भट्ट ने एक जगह लिखा है, 'प्रेमचंद जी ने साहित्य समाज, राजनीति के क्षेत्र में क्रांति का बीजारोपण किया है, जो आगे चलकर विशाल वृक्ष में परिणित होगा, जिसकी सुशीतल छाया में सुखी राष्ट्र का निर्माण होगा.' 'कफन' का घीसू या 'मंत्र' का भगत, 'गोदान' का होरी या फिर 'निर्मला' की निर्मला, सभी इस भौतिकवादी समाज में व्याप्त अर्थ कुचक्र के वे दृश्य उपस्थित करते हैं जो नैतिकता और मानवता को निगल जाते हैं. 'नमक का दरोगा' का वंशीधर, 'ईदगाह' का मासूम बालक हामिद, 'पंच परमेश्वर' का अलगू चौधरी, ये सारे चरित्र अर्थ क्रम में पीछे रहने के बावजूद अपनी नैतिकता, सरलता व न्यायप्रियता के प्रतीक बनकर उभरते हैं. आज के परिवेश में समीचीन 'गोदान' के एक प्रसंग का उल्लेख करना यहां आवश्यक हो जाता है, जिसमें प्रेमचंद ने भोला को माध्यम बनाकर कहा है, 'कौन कहता है कि हम तुम आदमी हैं. इसमें आदमियत कहां? आदमी वह हैं, जिनके पास धन है, अख्तियार है, अलम है. हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं.

प्रेमचंद में अपने चरित्रों को लेकर परिस्थितियों की अभिव्यक्ति की तीक्ष्ण तथा ईमानदार क्षमता थी. ऐसी ईमानदार क्षमता हमें 'गोदान' के गोबर के चरित्र में भी दिखायी पड़ती है. गोबर धनिया के प्रश्न का उत्तर देते हुए स्पष्ट कहता है, 'पालने में तुम्हारा क्या लगा? बच्चा था, दूध पिला दिया. फिर लावारिस की तरह छोड़ दिया. जो सबने खाया, वही मैंने खाया, मेरे लिए दूध नहीं आता था, मक्खन नहीं बंधा था और तुम चाहती हो और दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा कर्जा चुकाऊं, लगान दूं, लड़कियों का ब्याह करूं. जैसी मेरी जिंदगी, तुम्हारा देना भरने के लिए ही है.' प्रेमचंद ने ऐसे कई चरित्रों का निर्माण किया है जिनमें मानवीय संवेदनाएं तो हैं परंतु उन चरित्रों में मौजूद व्यक्तिगत कमजोरियां स्वयं उभर आती हैं.

मुंशी प्रेमचंद किसी भी वैचारिक संप्रदाय को स्वीकार नहीं करते. एक ईमानदार लेखक होने के नाते ये लेखकीय गरिमा को काफी ऊंचाई पर ले जाते हैं. उसी साहित्य को वह सच्चा मानते हैं जो राजनीति का पिछलग्गू न हो. इनकी रचनाओं ने यह भी स्पष्ट किया है कि राजनीतिक प्रतिबद्धता जैसे साहित्य को निर्जीव व बनावटी बना देती है, वैसे ही स्वयं जन्मी आस्था से साहित्य सजीव व स्वाभाविक हो उठता है और प्रेमचंद की पीड़ित मानवता के प्रति आस्था निर्विवाद रूप से सिद्ध है. इन्हें होरियों, वंशीधरों और निर्मलाओं में ही यथार्थ का बोध होता है.

प्रेमचंद की रचनाएं साफ बताती हैं कि इनमें संवेदनाओं की कमी नहीं है. कोई भी रचना के संवेदनशील होने की एक ही शर्त है कि उसका रचयिता भी संवेदनशील हो. 'सोजेवतन' की कहानी, 'यही मेरा वतन है' से लेकर पंच परमेश्वर, बूढ़ी काकी, नमक का दारोगा, ईदगाह, पूस की रात, सवा सेर गेहूं, ठाकुर का कुंआ तक तथा उपन्यास सेवासदन से लेकर प्रेमाश्रम, रंगभूमि गबन, निर्मला, प्रतिज्ञा, गोदान तक इनकी लेखनी ने संवेदनशीलता और उत्तरोतर होते वैचारिक परिवर्तनो का स्वाभाविक लक्ष्य सामने रखा है.

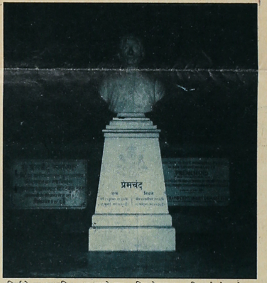

प्रेमचंद की रचनाओं में लक्ष्मी-पति शोषणकर्ताओं ने भी कभी-कभी ऐसी बातें स्वेच्छा से स्वीकार की हैं जो उनके चरित्रों के उन पहलूओं को उजागर करती हैं, जहां कुछ अंश तक मानवता जीवित है. आशय यह कि इनके शोषणकर्ता भी मानवीय कमजोरियों के चलते शोषक बन बैठे हैं. 'गोदान' के राय साहब की स्वीकारोक्ति कुछ ऐसी ही है–

'मैं तो कभी-कभी सोचता हूं कि अगर सरकार हमारे इलाके छीनकर हमें रोजी के लिए मेहनत करना सिखा दे तो हमारे साथ उपकार करे.'

'नमक का दारोगा' के लक्ष्मी-प्रेमी पंडित आलोपीदीन स्वीकार करते हुए कहते हैं–

'दारोगा जी.... मैंने हजारों रईस और अमीर देखे. हजारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा किंतु मुझे परास्त किया तो आपने. मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बनाकर छोड़ दिया. मुझे आज्ञा दीजिए कि आपसे कुछ विनय करूं. यहां परिस्थितिवश जो वैचारिक परिवर्तन उभर रहा है उसे नजरअंदाज करके प्रेमचंद को जानने का प्रयत्न मिथ्या ही है.

कहानी, उपन्यास के अलावा प्रेमचद के तीन नाटकों 'कर्बला', 'प्रेम की बेदी,' 'संग्राम' की रचना की है. इनमें 'कर्बला' नाटक काफी विवादास्पद रहा. प्रेमचंद ने बाल साहित्य और अनुवाद भी किये हैं. बच्चों के लिए लिखी पुस्तकों में महात्मा शेखसाही, जंगल की कहानियां तथा कुत्ते की कहानी चर्चित रचना है.

प्रेमचंद ने टाल्सटाय की कहानियों का संपादन सन् १९२३ में, साईलस माइन का सुखदास नाम से सन् १९२० में, जान गाल्सवर्दो की रचना का चांदी की डिबिया नाम से अनुवाद व संपादन १९३० में किया पंडित नेहरू के पत्रों का 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' से संपादन किया है.

आज प्रेमचद को हमारे मध्य से गये ५४ वर्ष बीत चुके हैं, मगर उनकी रचनाएं हमेशा हमारे बीच रहकर याद दिलाती रहेंगी कि यह देश जितना जमींदारों का उतना ही होरियों का है. जितना भ्रष्टाचार में लिप्त पंडित अलोपीदीनों का है उतना ही न्यायप्रिय कर्तव्यपरायण वंशीधरों का है. जितना डाक्टर चड्ढा जैसे नैतिकता विहीन डाक्टरों का है, उतना ही मानवीय पीड़ा को समझने वाले भगतों का भी है.

एक बार शिवरानी देवी ने सच कहा था, 'मुंशी जी की असली स्मारक तो वह है जो उन्होंने लेखनी के द्वारा पन्नों पर बनाया है,' प्रेमचंद की रचनाओं को आधार बनाकर बंगला भाषा के महान रचनाकार स्व. विमल मित्र ने इनका मूल्यांकन करते हुए कहा था, 'मैं प्रेमचंद का मूल्यांकन विश्व के पांच अग्रणी कथा साहित्यकारों में करता हूं, वे अंतोन चेखव, सॉमरसेट मॉम, मोपांसा तथा जार्ज बर्नाड शॉ के समकक्ष हैं.' □

तुलसी जयंती जिनका जन्म दिवस है

'मैं हारा हूं पर गाता हूं'

स्व. श्री भारतभूषण अग्रवाल के कुछ अंतरंग संस्मरण

शर्मनलाल अग्रवाल

बात १९३३ की है मथुरा के चपा अग्रवाल के कालेज की कक्षा ९ में सत्येंद्र जी हिंदी पढ़ा रहे थे. उनके शिक्षण का स्तर तत्कालीन स्तर से कहीं ऊंचा होता था उन्होंने प्रश्न किया, 'शैली से आप क्या समझते हैं.' कक्षा में कुछ देर शांति रही फिर एक छोटा बालक बड़ी गंभीरता से बोला, 'मास्टर साहब शैली का अर्थ होता है 'पहाड़ी'. मास्टर साहब और सारी कक्षा कुछ चकित होकर देखने लगी. 'शैल' का अर्थ होता है 'पहाड़' इसलिए शैली का अर्थ हुआ पहाड़ी.' कक्षा में हंसी का फव्वारा फूट पड़ा. सत्येंद्र जी प्रयत्न करने पर भी गंभीर न रह सके. भारत जी के इस अर्थ की बड़ी चर्चा रही. संग्रहालय के तत्कालीन निदेशक डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी इसकी बड़ी प्रशंसा की. वे उस समय भी भारत जी से बहुत प्रभावित थे.

संघर्षों से जूझते हुए विद्रोही भारत :

उस समय पारिवारिक परिस्थितियां उनके अनुकूल न थी. जीवन बड़ा सघर्षमय था. उन्होंने भारत को विद्रोही बना दिया.

परिवार के प्रति, समाज के प्रति एवं रूढ़ियों के प्रति वैसे वे जन्मजात कवि थे. आज उनको प्रगतिशील और प्रयोगवादी कवि के रूप में जाना जाता है. उनको प्रथम 'तार सप्तक' में स्थान मिला पर वे मूल रूप से भावनाओं के कवि थे. उनके गीतों में धरती की सोंध थी. आंसुओं का गीलापन. आशा की मुस्कराहट और निराशा की खीझ. १९३६ में सेंट जांस कालेज के सभागार में उनके द्वारा 'शकुंतला की विदा' पढ़ी गयी.

क्रीड़ा बीड़ा सुस्मित ओ
जीवन के मनुहार विदा दो
जाती शकुंतला है पतिगृह मेरे शोभागार विदा दो.

अनेक श्रोताओं के नेत्र गीले हो उठे थे अपनी पुत्रियों के साथ बैठी हुई कई माताएं तो बिखलकर रोने लगीं थी.

प्रत्येक गीत स्वयं एक कहानी

समाज ने उनका शोषण किया. उन्होंने दृढ़ता से उन चुनौतियों को स्वीकार किया.

मैं ही अपना निर्मात्र हूं
ओ जग रो ले अपनी जय पर
मैं हारा हूं पर गाता हूं.

देहरादून के निकट सहस्र धारा की ऊंची पहाड़ी पर चांदनी रात्रि में कल-कल निनाद करते हुए झरनों के मध्य उनका गीत फूट पड़ा.

रात्रि अंधेरी निर्झर का स्वर भर जाता मेरे कानों में.
खोज रहा हूं सजनि तुम्हें मैं इन बिखरे से अरमानों में.

उनकी वह खोज बहुत दिनों तक जारी रही. साहित्यकारों के प्रति समाज की कठोर उपेक्षा और मृत्यु के पश्चात् मगरमच्छी आंसू बहाते हुए अभिनंदन के स्वर में चिढ़ पैदा करते थे.

कब्रों पर दीप जलाते हैं
जब तक जीवित है रोयाकर, मरने पर शायद हो आदर.
निष्ठुर जग बतला क्यों तुझको औरों के आंसू भाते हैं.

'प्लेटफार्म पर बिदाई' गूंज रही है शहनाई 'गा उठी तुम कामिनी', तुम कौन हो' आदि ऐसे गीत हैं जिनमें प्रत्येक के पीछे एक कहानी छिपी हुई है. 'जागते रहो' के द्वारा वे निरंतर समाज को झकझोर कर जगाते रहे.

काम के धनी और बात के खरे

घटना उस समय की है जब वेउसे आकाशवाणी में काम करते थे. उनके विभ्रजीम में कुछ महिलाएं भी थीं जिनको काम्ही, उस अपेक्षा निजी बातों में अधिक रुचि थ्रेश्यागमन तो काम करना नहीं चाहती थीं याफ समझदारी सकती थीं, चाय की प्याली और है. यह अलग की गर्मी के मध्य वे उनसे काम्ही सकता है, कर करती थीं. भारत जी कहवेर्फ समाज को नहीं अपने श्रृंगार -पटार में व कोसता है. गत दिनों सारा काम कर लूंगा पर, आंदोलन से भी अजीम ही नाम जुड़ेगा. यह न्रा और उसने एक संगठन तो मैं करूं और नाम्कोशिश की थी. इस बाबत समय कन्ी दस्त है कि दरअसल आरक्षण तो अंतिम दस्तक। चाहिए, जिन्हें मुगलकाल के प्रेमवादी, प्रफ़भी सम्मान नहीं दिया गया और ना सदैव के नि तरीकों से जीने दिया गया.' □